

---

## प्राचीन भारत के समाज सुधारकों की परम्परा (वैदिक काल से 647 ई0 तक)

डॉ0 श्यामदेव पासवान  
समाजशास्त्र विभाग,  
संजय गाँधी महिला कॉलेज गया

वैदिक युग में शिक्षा के उद्देश्य एवम उसके समाज सुधारक स्वरूप वैदिक समाज में शिक्षा अथवा विद्या का स्वरूप अत्यन्त ज्ञान परक, सुव्यस्थित ओर सुनियोजित था, जिसमें व्यक्ति के लौकिक और पारलौकिक जीवन के लिए विभिन्न प्रकार के शिक्षा दी जाती थी। भौतिक और अध्यात्मिक जीवन निर्माण तथा विभिन्न उत्तरदायित्वों को सफल पूर्वक निस्पादन करने के लिए शिक्षा के माध्यम से ही सम्भव माना जाता रहा है और शिक्षा से यह है, कि शास्त्र ओर विवेक के शिक्षा पुरी होती है और शिक्षा से मनुष्य के ज्ञान को उदय होता है। ज्ञान या विद्या से मुक्ति मिलती है और मनुष्य शिल्प में निपुणता प्राप्त करता है। ..... ।

विद्या और सच्ची लगन से जो व्यक्ति कर्म करता है वही अधिक शक्तिशाली होता है . ..... । ज्ञान तथा विद्या से व्यक्ति का कर्म और आचरण पुरिस्कृत और दिव्य हो जाता है तथा ज्ञान सम्पन्न होकर देवतुल्य हो जाता है। वैदिक युग में ऐसे व्यक्तियों का सर्वोच्च प्रतिष्ठा प्राप्त थी। एसी धारणा थी, कि विद्या और ज्ञान से सम्पन्न हो व्यक्ति ऋषिऋषण से मुक्त हो जाता था। उस युग में ऊँचे विचार, ज्ञान की महिमा त्यागमय, जीवन अध्यात्मिक चिन्तन, ओर भौतिक आकर्षण के प्रति विरक्ति मनुष्य के जीवन के मूल्य थे। शतपथ ब्रह्मण में कहा गया है, कि स्वाध्याय और प्रवचन का अनुगमन करने से व्यक्ति का मन एकाग्र हो जाता है, फलस्वरूप वह स्वतंत्र हो जाता है इससे उसे नित्य धन की प्राप्ति होती है सुखद निद्रा आती

है वह अपना चिकित्सक बन जाता है, उसकी इन्द्रियाँ संयमित हो जाती हैं वह प्रज्ञावान हो जाता है। यशस्वी हो जाता है और संसार के अभ्युदय में लग जाता है।

समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व के ब्रह्मण ज्ञान के माध्यम से पूर्ण करता है इस पर समाज उसे आदर देता है, दान देता है और उसे सुरक्षा प्रदान करता है। जो लोग अनेक प्रकार की विद्यताओं का अध्ययन करते हैं वे देवताओं को प्रसन्न करते हैं तथा अपनी कामनाएं पूर्ण करते हैं।

विद्या के द्वारा देव लोक को जीता जा सकता है अन्य किसी माध्यम से नहीं। विद्या में जीवन जलगत के हर रहस्यों को जाना जा सकता है। इसलिए कहा गया है कि विद्या के समान दूसरा कोई नेत्र नहीं ..... 2

## शिक्षा का उद्देश्य

मनुष्य के जीवन को शिक्षा और ज्ञान से धर्म, प्रवण, नैतिक मूल्यों से युक्त, उच्च आदर्शों से संचालित और बहुबुखी व्यक्तित्व से युक्त होता है। विद्यार्जन से व्यक्तित्व से युक्त होता है। विद्यार्जन से व्यक्ति आत्म निर्भरता तो प्राप्त करता है साथ ही परिवार और समाज के निर्माण में योगदान करता है। मनुष्य की धार्मिक वृत्तियों का उत्थान उसके सामाजिक उत्तरदायित्वों का निष्पादन और उसके संसारिक जीवन का उन्नयन शिक्षा के उद्देश्य उसके पणाम का उल्लेख है। जिसमें श्रद्धा, मेधा, प्रज्ञा, धन, आयु, और अमृतत्व को सन्निहित किया गया है।

### **1) मनुष्य की धार्मिक वृत्तियों का उत्थान :**

शिक्षा का उद्देश्य धार्मिक वृत्तियों का उत्थान है इससे विद्यार्थि के जीवन में भक्ति, धर्म, शुद्धता और पवित्रता की भावना की वीजारोपण होता है। जीवन में उत्थान के लिए

आत्मविश्वास, आत्मबल और आत्म शक्ति की आवश्यकता होती भावना से और प्रवाल होती है ब्रतों का पालन से संयमी मनुष्य को निश्चय ही अपने गृह स्वस्थ का मान होता है, जो उसे आत्मविश्वास का कारण होता है दृ ।

मनु के अनुसार शौच पवित्रता, आचार स्नान किया अग्नि कार्य और सन्ध्योपासन ब्रह्मचारी का धर्म था। उसके साथ ही उस धर्म के पाल में प्रमाण न करने का निर्देश दिया गया जिससे उनका धर्मनिष्ठ व्यवहार बना रहें ..... 2

## **2) मनुष्य के चरित्र या आचरण का उत्थान :**

मनुष्य के चरित्र का उत्थान शिक्षा का दूसरा उद्देश्य था। चरित्र, आचरण का इतना महत्व था, सचित्र कि समस्त वेदों का ज्ञाता वि० दान सच्चरित्रता और सदाचरण के अभाव में माननीय नहीं था। किन्तु केवल गायत्री मंत्र का ज्ञाता पंडित अपने सच्चरित्रता के कारण माननी और पुजनी था।

वस्तुतः चरित्रता व्यक्ति का भूषण मानी गयी थी। आचरण सम्पन्न व्यक्ति अभिनन्दनीय और आचरणहीन व्यक्ति निन्दनीय था। शिक्षा अवधि में मनुष्य के चरित्र उत्थान पर ध्यान दिया जाता था। समाज कि अन्य लोगो के साथ उसके सद्व्यवहार की प्रवृति उसके चरत्रोहीन में सहायक तत्व थी। सहिष्णुता और आद्रश मनुष्य के चरित्र के उत्थान के मुख्य तत्व थे। अतः धर्म और चरित्र का जिसमें वध न था, वही पंडित था ..... 2

## **3) मनुष्य के व्यक्तित्व का उत्थान :**

शिक्षा और ज्ञान की प्राप्ति से मनुष्य व्यक्तित्व का उत्कर्ष होता था व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास के लिए शिक्षार्थी में आत्मविश्वास को होना आवश्यक है। इसलिए ब्रह्मचारी में यह आत्मविश्वास लगाया जाता था ताकि भावी जीवन में भयंकर कठिनाईयों में भी स्थिर मति रह

सकें। शिक्षा इसमें अहम् भूमिका निभाती है। शिक्षा प्रारम्भ के समय उपनयन संस्कार होता था। उसी समय उसमें आत्म विश्वास लगाया जाता था अग्नि से प्रार्थना की जाती थी कि वह छात्र पर अपनी दया दृष्टि रखे और उसकी बुद्धि, मेधा और शक्ति में वृद्धि करें ..... ।

जिसमें अग्नि शिखा की तरह उसकी विद्या और शक्ति की कीर्ति सभी दिशाओं में प्रसारित हो। अनेक देवताओं के पूजन के साथ यह भावना उसमें दृढ़ की जाती थी, कि देवतागण उसकी रक्षा करेंगे। ब्रह्मचारी में आत्म संयम की भावना भी भरी जाती थी। इसमें भी व्यक्तित्व का विकास होता था।

#### **4) सामाजिक उत्तरदायित्वों का निशपादन :**

शिक्षित और ज्ञानवान होने के कारण अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों को निष्ठापूर्वक निष्पादन करता था। शिक्षा अध्ययन की अवधि में वह अपने हितों का ही ध्यान न रखता कि अपितु अन्य जिज्ञासु विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा भी प्रदान करता था। अपना कर्म करते हुए अपनी समाजिक प्रतिष्ठा दृढ़ रखता था। पुत्र—पिता और पति के रूप में वह अपने विभिन्न उत्तरदायित्वों का सम्पन्न करता था।

पुत्र—पिता और पति के रूप में वह अपने विभिन्न उत्तरदायित्वों सम्पन्न करता था। विद्यार्थी के समावर्तन समारोह के उपदेश में उसके लिए उसका स्पष्ट उल्लेख किया गया सत्य बोलना धर्म का उच्चारण करना, स्वाध्याय में प्रसाद न करना, आर्चा की दिक्षणा देने पर सन्तति उत्पादन की परम्परा विच्छिन्न न करना, सत्य से न हटना, लाभ कार्य में प्रमाद न करना, महान बनने के सुअवसर से न चुकना, पठन—पाठन के कर्तव्यों में प्रमाद न करना, देवता और पितरों के कार्य से प्रमाद न करना, माता को देवी समझना, आचार्य को देवता समझना, अन्यान्य दोष रहित कार्यो को करना।

इस कथन स्पष्ट है कि मनुष्य के अनेकानेक उत्तरदायित्व थे, जिन्हे वह शिक्षा प्राप्ति के बाद सोस्साह मनानिवेश पुर्वक सम्पादित करता था। सभी वर्णी और जातियों भिन्न-भिन्न कर्म थे, जिनका सम्पत्ति करना उनका परम धर्म था।

### 5) सांस्कृतिक जीवन का उत्थान :

शिक्षा और विद्या के माध्यम से सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन का उत्कर्ष होता है। शिक्षा से ही उतीत की सांस्कृति वर्तमान में जीती है तथा पहले से चली आती हुई परम्पराएं जीवन हो उठती है। अतः अपनी संतति को शिक्षा द्वारा ही शिक्षित करना और प्राचीन संस्कृति की ओर प्रवृत्त इसका प्रधान लक्ष्य था। सांस्कृति के जीवन के उत्थान के लिए त्रिऋण की अनिवार्यता मानी गयी। इनमें से उऋणह होना सबका प्रधान कर्तव्य था तैतरीय सहिता में उल्लेखित है कि ब्रह्मचर्य द्वारा व्यक्ति ऋषिऋण से मुक्त होता है। देवऋण त्रिऋषिऋण और पितृऋण से मुक्त होना अवश्यमभावी था। इस प्रकार हम देखते हैं कि सांस्कृतिक जीवन के उत्थान में परम्पराओं का प्रचारित करने वाले नए साहित्य, पुराणों का निर्माण हुआ जिसमें अतीत के जीवन के प्रति आकर्षण था।

### संदर्भ ग्रंथों की सूची

1. आगमोत्थं विवेकाच्च ब्दिहा ज्ञानम् तदुच्चतें । वि० पु० 6-5-6 ।  
सा विद्या या विमुक्तये । विद्यान्या शिल्पणैपुष्यम् । वि० पु० 1-19-4 ।
2. ऋगवेद 1-164, 66, शतपथ ब्रा० 2 2ण० 6 अथर्ववेद तै० सं० 6-3-1065 श० ब्रा० 11-5-7-1-5 ।
3. महाभारत 12-339-6 नास्ति विद्यासमं चक्षुनस्ति संत्यसमं तपः ।

4. रश्मि माल, 1072 |
5. मनु0 2-69 |
6. अमृत मंथन, 15-4 |
7. मनु0 2-118 |
8. महाभारत अनुशासनपर्व 12-321-78 |
9. भा0 गृ0 11-5 |
10. तैत्तरीय उ0 1-11 |
11. शतप ब्रा0 1-5-5 |